मज़हब या ज़मीर

आख़री किस्त

रईसुल उलमा आयतुल्लाह सय्यद काज़िम नक़वी साहब क़िबला

ज़मीर की हुकूमत मुख़तलिफ़ जेहतों से ग़ैर मुकम्मल है, जबकि इसके मुक़ाबिलें में अक़ाएदे मज़हबी की हुकूमत अगर उन्हें आज़ादी से फलने–फूलने की इजाज़त दे दी जाए हर हैसियत से मुकम्मल है। इसी बिना पर हक़ाएके मज़हबी के असरात बहुत गहरे हैं। ज़मीर के तास्सुरात उनकी बनिस्बत बहुत कमज़ोर और सतही हैं।

इंतेहाई सरकश और मुतामर्रिद क़ौमों के मुख़तलिफ़ इजतेमाई मफ़सिद की बुनियादी और हमागीर इस्लाह तालीमाते मज़हबी के साए में हुई। अगर इस अज़ीम इस्लाह के लिए उन क़ौमों के ज़मीरों की तरबियत का रास्ता इख़तियार किया जाता तो हरगिज़ कामियाबी हासिल न होती।

आज भी अगर अक़वामे आलम के दरमियान से मज़हबी ऐतेक़ाद का क़दम हट जाए, उन्हें राहे रास्त की तरफ़ मुतावज्जे करने के लिए सिवाए ज़मीर की आवाज़ के कोई दूसरी आवाज़ न हो तो यक़ीनन अख़लाक़ी और समाजी मफ़सिद की तादाद मौजूदा तादाद से कई गुनी बढ़ जाए। दरिनदा सिफ़त इंसान अपने फ़ायदे की ख़ातिर दूसरे लोगों की ज़िंदगी का जल्द से जल्द ख़ातमा कर दें। इसके बरअक्स मतबूआत और दूसरे वसाएल नश्र व इशाअत के ज़रीए आलमी पैमाने पर, दिलकश ज़बान में, मोअस्सिर अंदाज़ से अगर मज़हबी अक़ाएद की इस तरह मुसलसल और पैहम तबलीग़ की जाए कि वह अवामुन्नास के दिलों की गहराईयों में उतर जाएं, अगर लोगों को इन तालीमात के ज़ेरे असर यह यक़ीन हो जाए कि खुदा तमाम हालात में हाज़िर व नाज़िर है, अगर उनके आमाल क़ल्ब में रोज़े आख़िरत और इंसानी आमाल की जज़ा व सज़ा का ऐतेक़ाद रासिख़ हो जाए तो यक़ीनन दुनिया का रंग बदल जाए, अख़लाक़ी और इजतेमाई मफ़सिद की बड़ी तादाद इस्लाह पा जाए लेकिन अगर इसी पुर ज़ोर तरीक़े पर ज़मीर की तरबियत का इंतेज़ाम किया जाए तो इसके बहुत मामूली नताएज आंखों के सामने आएंगे। इसकी वजह वही ज़मीर की जाती ना रसाई है जो किसी तरह उससे अलग नहीं हो सकती जिससे मज़हब का दामन पाक है।

दूसरा एतेराज़

हमने हुकूमते ज़मीर के महदूद होने के सिलसिले में जो कुछ कहा उसका यह मतलब नहीं कि इंसान की अख़लाक़ी तरबियत में ज़मीर का कोई दख़ल नहीं है। हमारा मक़सूद सिर्फ़ यह था कि उन लोगों की ग़लत फ़हमी को दूर करें जो ज़मीर को मज़हब की जगह देना चाहते हैं। हमने साबित किया कि ज़मीर अपने मुतादिद नक़ाएस की वजह से मज़हब का जानशीन नहीं बन सकता, न वह खुद इस मनसब का दावे दार है और न हम उसे यह सुपुर्द कर सकते हैं।

हम इस बात के हरगिज़ मुनकिर नहीं हैं कि ज़मीर मज़हब का आलए कार बन सकता, उसमें यह सलाहियत मौजूद है कि रहनुमायाने दीन इंसान की अख़लाक़ी और मुआशरती

इसलाह के सिलसिले में उससे मदद लें, इस लिहाज़ से उसे रसूले बातिन का लक़ब देना सही है।

अगर इस रसूले बातिन की नशु नुमा मज़हब के तालीमात के साये में हो, अगर यह बातिनी कुव्वत उनके चश्म व अब्र के इशारों की पाबंद हो तो खुद इंसान की हस्ती के अंदर एक अख़लाक़ी राहनुमा का पार्ट अदा कर सकती है। ज़हिर है कि इस रसूले बातिन का बराहे रास्त ताल्लुक़ आलमे मावराउत तबिया से नहीं है वह वही व इलहाम का सामान नहीं रखती, वह ख़ताओं और लग़ज़िशों से महफ़ूज़ नहीं है इसी बिना पर उसे मुस्ताक़िल राहनुमा नहीं क़रार दिया जा सकता, उसे अपने इ स्लाही और तरबियती प्रोग्राम को मज़हबी तालीमात के मुताबिक़ मुरत्तब करना चाहिए। इस सूरत में बेशक वह इंसनी तरबियात में सही तौर से **मुअस्सिर (प्रभावी) हो सकता है।**

कुतुबे समाविया और पेशवायाने मज़हब के इरशादात में इंतेहाई अहमियत के साथ इंसानी ज़मीर का ज़िक्र किया गया है। अगरचे ज़मीर की इस्लाह नई है और यह ताबीर मज़हबी राहनुमाओं के अक़वाल में नज़र नहीं आएगी। लेकिन उससे ज़ियादा अहम और क़ीमती अल्फ़ाज़ से उसे याद किया गया है।

1— '' रोज़े क़यामत और सरज़निश करने वाले नफ़्स की क़सम''(सूरए क़यामत)

यह मलामत करने वाला नफ़्स वही इंसानी ज़मीर है जो पस्त कामों के मुरतकिब होने के मौक़े पर इंसान को सरज़निश करता है ''नफ़्से लव्वामा'' से उस कुव्वत की ताबीर निहायत सही और मुनासिब है।

कुरआने मजीद में मुख़तलिफ़ चीज़ों की क़सम खाने के मुफ़स्सेरीन ने बहुत से असरार और रूमूज़ बयान किए हैं। एक वजह यह भी ज़िक्र की गई है कि खुदा उस शै की अहमियत को ज़ाहिर करना चाहता है जिसकी क़सम खाई है। इस आयत में ''नफ़्से लव्वामा'' की क़सम का मक़सद यही है कि उसकी अहमियत को लोगों के सामने नुमायां किया जाए।

यह नुक्ता भी तवज्जों के क़ाबिल है कि क़सम मज़कूर रोज़े क़ायमत की क़सम के पहलू में क़रार दी गई है। यह पहलू नशीनी मानी ख़ेज़ है। शायद इस अम्र की तरफ़ इशारह करना मंजूर है कि रोज़े क़यामत पर ईमान और ज़मीर दोनों के असरात यक्सां हैं। यह दोनों लोगों के आमाल को राहे रास्त पर लगाने का सबब हैं इन दोनों की हम आहंगी फ़र्द व जामाअत की दाएमी और पाएदार इस्लाह का बाइस हो सकती है।

2— ''फ़रजउ इला अनफ़ुसिहिम फ़क़ालू इन्नकुम अनतुमुज़ ज़ालिमून''(सूरए अम्बिया) कुरआने मजीद इस आयत में ज़मीर के ज़बरदस्त असरात की तरफ़ इशरा कर रहा है। जब हज़रत इबराहीम ने बुत खाने के तमाम अस्नाम सिवाए एक बड़े बुत के तोड़ डोले तो आपको गिरफ़तार करके साहिबाने हल व अक़्द के सामने लाया गया। आपने फ़रमाया कि सारा माजरा इस बड़े बुत से दरियाफ़्त कर लो। जो कुछ हुआ उसके सामने हुआ है, इस मौक़े पर बुत परस्त चकराए, क्योंकि जनाव इबराहीम के जवाब में अगर कहें कि यह बुत कुछ नहीं समझ सकता, बोलने और किसी को पहचानने की कुव्वत उसमें मौजूद नहीं है, यह गूंगा, बहरा, बेशऊर है तो वह अपनी रूसवाई का खुद सामान मुहय्या करें कि जो खुदा इतना कमज़ोर है वह अपने बेचारे बंदों की किया मदद कर सकता है।

(बक़िया पेज नं0 14 पर,...............)

क़ातिल खुद नक़्ल करता है कि जब तक सांस की आमद व रफ़्त बाक़ी रही, आप उम्मत की नजात के लिए दुआएं करते रहे। लब पर शिकवा था और न गिला दिल की गहराइयों से हम्दे इलाही और बख़्शिशे उम्मत की इलतेजा की आवाज़ें आ रही थीं।

हम इमाम हुसैन(अ०) को अपना क़ौमी रहबर और दीनी पेशवा जानते और दो महीना आठ दिन खुसूसियत के साथ उनकी याद में मजलिस करते और जुलूसे अज़ा निकालते हैं। अगर उनके पाकीज़ा किरदार और बलंद अफ़कार को भी अपना लाइह–ए–अमल बनाएं तो नौए इंसानी की बड़ी ख़िदमत कर सकते हैं आज जहाँ–जहाँ भी मुसलमान आबाद हैं, सियासी हरबों की बदौलत नुक़साने माया और शमातते हमसाया के शिकार हैं।

अशरए मुहर्रम रस्मी तौर पर न मनाइए। यह हुसैनी दर्सगाह, इस्लामी तालीम को अज़ सरे नौ दोहराने और ज़िन्दगी को उसी अख़लाक़ी साँचे में ढालने का मौक़ा बहम पहुँचाती है जिसने बहत्तर जांबाज़ों को कम से कम तीस हज़ार की फ़ौज पर ग़ालिब कर दिया था, जहाँ हुसैन(अ०) की बे मिस्ल क़यादत ने अरब व अजम, रूमी और तुर्की और हबशी नस्ल के लोगों को नज़रयाती वहदत के ज़रिए शाना ब शाना खड़ा कर दिया था। आज भी फ़र्ज़न्दाने इस्लाम पर सख़्त वक़्त आते हैं और अस्रे हाज़िर की तख़रीबी कुव्वतें उन सलाहियतों को चैलेंज देती हैं। क्या आज़माइश की ऐसी घड़ियों में हम कारवाने करबला से रहनुमाई हासिल करते हैं या नहीं? तज़किर–ए–हुसैनी को ज़िन्दा रखना और हुसैनी सियासत, शुजाअत और क़ायदाना सलाहियत को मिसाल के तौर पर अपनी मौजूदा और आइंदा नस्ल के सामने पेश करना इस्लाम और मुसलमानों की बक़ा और तरक़्क़ी के लिए ज़रूरी है।



(बकिया पेज नं 16 का ,,,,,,,,,,,,)

यह खुदा तो अपने बंदों से भी ज़ियादा आजिज़ और बेबस है।

यह मौक़ा था कि यका यक उनके ज़मीरों की बिजली चमकी, उसने उनकी आंखों से औहाम व खुराफ़ात के पर्दे सरकाए, खलीले खुदा के इस ज़बरदस्त ज़ेहनी झटके ने कुछ देर के लिए उनके सोए हुए ज़मीर को बेदार किया, उसने चीख़ कर उनसे कहा कि ऐ बेवकुफ़ों! यह बुत जो तुम्हारे सामने अपने दुश्मन के ख़िलाफ़ गवाही तक नहीं दे सकते इस क़ाबिल नहीं हैं कि तुम उनकी परस्तिश करो, उनके और आम पत्थरों के दरमियान कोई फ़र्क़ नहीं है। बल्कि दूसरे पत्थर तो तुम्हारे काम आते और यह किसी मर्ज़ की दवा नहीं हैं।

यह वक़्त था कि बुत परस्तों ने अपने को सरज़निश की और कहा ''इन्नकुम अनतुमुज़ ज़लिमून'' तुम लोग, हां यक़ीनन तुम लोग ज़ालिम और सितमगर हो। यह मौक़ा था कि रसूले बातिन यानी ज़मीर रसूले ज़ाहिर यानी इबराहीम का हम आहंग हो गया। दोनों ने मिल कर आईने बुत परस्ती पर ख़त नस्ख़ खींच दिया।

अफ़सोस कि इस बेदारिए ज़मीर की उम्र बहुत मुख़तसर थी, चंद लमहों के बाद बुत परसतों का जमीर दोबारा ख़्वाबे गफ़लत में चला गया। औहाम व खुराफ़ात के तारीक पर्दे उनकी आंखों पर पड़ गए उन्होंने जनाब इबराहीम के जला डालने का हुक्म दे दिया।